अङ्क-२७
जनवरी-जून २०१६

वेदविद्या
ISSN-२२३०-८९६२

वैदिकवाङ्मय में पर्यावरणचेतना

डॉ. धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

वेद भारतीयसंस्कृति के प्राणतत्त्व हैं। भारतीयसमाज को आदर्श-रूप देने में वेदों का योगदान सर्वविदित है। ये भारतीय ज्ञानगङ्गा के उत्स हैं। इनकी दिव्य आभा से समस्त भारतीय वाङ्मय प्रकाशित है। इनका आश्रय लेकर सर्वविध समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। 'वैदिक' शब्द वेद-विषयक बहुविध ज्ञान-सामग्री का बोधक है।

सम्प्रति समग्र विश्व में 'पर्यावरण' चर्चा के केन्द्रबिन्दु में बना हुआ है। 'परि' एवम् 'आङ्' उपसर्गपूर्वक 'वृ' धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय होने पर पर्यावरण शब्द निष्पन्न होता है। इस दृष्टि से जीवों के चारों ओर आवृत होने वाले भौतिक और सांस्कृतिक उपादान को ही पर्यावरण कहा जाता है। आङ्ग्लभाषा में पर्यावरण के लिए 'Environment' शब्द प्रयुक्त होता है। इसके शब्दकोश में इस शब्द के अर्थ दिए गए हैं - **i) a surrounding, ii) external condition influencing development or growth of people, animals or plants, iii) living or working conditions.**

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि पर्यावरण के विविध आयाम हैं। इन्हें मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है- भौतिक पर्यावरण और सांस्कृतिक पर्यावरण। भौतिक पर्यावरण के अन्तर्गत पञ्चमहाभूत, वृक्ष-वनस्पतियाँ तथा जीव-जन्तु समाहित हैं। सांस्कृतिक पर्यावरण के अन्तर्गत मानसिक पर्यावरण, धार्मिक पर्यावरण, राजनीतिक पर्यावरण, सामाजिक पर्यावरण, पारिवारिक पर्यावरण आदि सम्मिलित हैं। वैदिकवाङ्मय में पर्यावरण के इन आयामों पर पर्याप्त मात्रा में सामग्री उपलब्ध होती है। पर्यावरण इन आयामों से सम्बन्धित सामग्रियों का उद्घाटन विश्वकल्याण का मार्गप्रशस्त कर सकता है।

उपभोगवाद की भावना से ओत-प्रोत मानव इस कलिकाल में पर्यावरणीय तत्त्वों की घोर अवहेलना कर रहा है। मोहजाल से समावृत मनुष्यों को इस बात का ज्ञान नहीं है कि-

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥[१]

अर्थात् यह निश्चय है कि जैसे अग्नि में ईन्धन और घी डालने से अग्नि बढ़ती ही जाती है, उसी प्रकार कामों के उपभोग से काम शान्त नहीं होता, किन्तु बढ़ता ही जाता है। इसलिए मनुष्य को कभी भी विषयासक्त नहीं होना चाहिए।

---

[१] मनुस्मृति, २.९४

वर्तमान स्थिति तो यही है कि सर्वविध पर्यावरण-प्रदूषण नानाविध समस्याओं का हेतु बन रहा है। प्राकृतिक-पर्यावरण के प्रदूषण तथा क्षरण के फलस्वरूप समग्र चेतन जगत् विविध व्याधियों से ग्रस्त हो रहा है। मानवमात्र को तो शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार के रोग अपने नियन्त्रण में ले रहे हैं। प्राकृतिक असन्तुलन की स्थिति नित नयी प्राकृतिक आपदाओं का कारण बन रही है। आत्मिक पर्यावरण के प्रदूषित होने से मानव आध्यात्मिक चिन्तन से दूर होता जा रहा है। वह काम, क्रोध, मद, लोभ, राग, द्वेष के वशीभूत होता जा रहा है। मानसिक प्रदूषण ने मनुष्य के आचरण को ही प्रभावित किया है। धार्मिक प्रदूषण के कारण आज का मानव कर्तव्य पर कम, अधिकार पर अधिक जोर दे रहा है। इस प्रवृत्ति ने मानवाधिकार-हनन की जटिल समस्या को जन्म दिया है। सामाजिक पर्यावरण के प्रदूषित होने से सामाजिक समरसता का अभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहा है। पारिवारिक प्रदूषण ने पारिवारिक सम्बन्धों को ही तार-तार कर दिया है।

यह कहने में किञ्चित् मात्र भी विचिकित्सा नहीं है कि पर्यावरण प्रदूषण ने जीवन और जीवन जीने के तरीकों को बहुत गहरे तक प्रभावित किया है। ऐसी स्थिति में वैदिकवाङ्मय हमारा मार्गनिर्देशन कर सकता है। चाहे भौतिक पर्यावरण हो या सांस्कृतिक पर्यावरण, वैदिकवाङ्मय में प्रतिपादित सिद्धान्त काफी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। वेदों में मानव और प्रकृति के मध्य घनिष्ठ एवं पवित्र सम्बन्ध को निर्विकार-रूप में निरूपित किया गया है।

पञ्चमहाभूत

पर्यावरणीय तत्त्वों में पञ्चमहाभूतों का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनके अन्तर्गत आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी सम्मिलित हैं। इन सभी तत्त्वों के महत्त्व और संरक्षण की बात वैदिक-साहित्य में पदे-पदे प्राप्त होती है।

पञ्चमहाभूतों में आकाश प्रथमस्थानीय है। आकाश शब्दगुणात्मक होता है। सम्प्रति विविध आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों के प्रयोग से ध्वनि-प्रदूषण के कारण आकाश तत्त्व प्रदूषित हो रहा है। इन उपकरणों में वाहन, औद्योगिक प्रतिष्ठान, ध्वनि-विस्तारक आदि प्रमुख हैं।इसके अतिरिक्त कुछ लोग परस्पर सम्भाषण के क्रम में आसुरी वाणी का आश्रय लेकर कठोर शब्दों से पर्यावरण को प्रदूषित कर रहे हैं। यहाँ अथर्ववेद का यह मन्त्र मार्गदर्शक हो सकता है-

इयं या परमेष्ठिनी वाग् देवी ब्रह्मसंशिता।
ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः॥[२]

अर्थात् परमपद पर विराजमान, तेजस्वी ज्ञान से देदीप्यमान जो वाणी की देवी सरस्वती हैं, वे हमारे द्वारा दूसरों के प्रति बोले गये अपशब्दों के दोष से हमें मुक्त करें तथा हमारे लिए शान्ति प्रदान करने वाली सिद्ध हों।

मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने ऋग्वेद में शुद्ध वाणी की कामना की है-

---

[२] अथर्ववेद, १९.९.३

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा ।[३]

अर्थात् हे देवताओं, हम कानों से मङ्गलप्रद वाक्य सुनें। अथर्ववेद मधुरता और सुख से युक्त वाणी बोलने की प्रेरणा देता है-

'मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्'।[४]

छान्दोग्योपनिषद् में आकाश को उत्कृष्ट तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है। कहा गया है- **आकाशे वै सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राण्यग्निराकाशेनाह्वयत्याकाशेन शृणोत्याकाशेन प्रतिशृणोत्याकाशे रमत आकाशे न रमत आकाशे जायत आकाशमभिजायत आकाशमुपासस्वेति।**[५] अर्थात् आकाश में ही सूर्य, चन्द्र ये दोनों तथा विद्युत्, नक्षत्र और अग्नि स्थित हैं। आकाश के द्वारा ही एक दूसरे को पुकारते हैं, आकाश से ही सुनते हैं, आकाश से ही प्रतिश्रवण करते हैं, आकाश में ही रमण करते हैं, आकाश में ही रमण नहीं करते, आकाश में ही सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं और आकाश की ओर ही बढ़ते हैं, तुम आकाश की उपासना करो।

यह उद्धरण आकाशतत्त्व के महत्त्व को स्थापित करते हुए सन्देश देता है कि आकाश तत्त्व के संरक्षण के लिए प्रयास करना चाहिए।

पञ्चमहाभूतों में वायु द्वितीय स्थानीय है। यह जीवधारियों के लिए आधारभूत तत्त्व है। अतः कविकुलगुरु कालिदास ने वायु की ओर सङ्केत करते हुए कहा है- **'यया प्राणिनः प्राणवन्तः।**[६] वस्तुतः वायु के कारण ही इस धराधाम पर जीवों की स्थिति है। परन्तु स्वार्थ के वशीभूत मानव ने आज इस प्राणदायिनी शक्ति को भी प्रदूषित कर दिया गया है। यह वायु प्रदूषण कालतुल्य हो समग्र सजीव जगत् के लिए सङ्कट का कारण बन रहा है। अगर हम शुद्ध वायु के महत्त्व को जानें तो वायुप्रदूषण की समस्या से निपटा जा सकता है। वैदिक ऋषयों ने वायुतत्त्व के महत्त्व को बारम्बार प्रतिपादित किया है। ऋग्वेद के दशममण्डल में वायुतत्त्व को प्रतिपादित करता हुआ यह मन्त्र उल्लेखनीय है-

वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे।
प्र ण आयूँषि तारिषत॥[७]

अर्थात् औषध के समान होकर वायु हमारे हृदय के लिए आवे। वह कल्याणकर और सुखकर हो। वह आयु का विस्तार करे।

उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा।
स नो जीवातवे कृधि॥[८]

---

[३] ऋग्वेद, १.८९.८
[४] अथर्ववेद, ३.३०.२
[५] छान्दोग्योपनिषद्, ७.१२.१
[६] अभिज्ञानशाकुन्तलम्, १.१
[७] ऋग्वेद, १०.१८६.१

अर्थात् वायु ! तुम हमारे पिता, भ्राता और बन्धु हो। तुम हमारे जीवन के लिए औषध करो।

यद्दो वात ते गृहे३ऽमृतस्य निधिर्हितः।
ततो नो देहि जीवसे॥[९]

अर्थात् वायु ! तुम्हारे गृह में यह जो अमृत की निधि स्थापित है,उससे हमारे जीवन के लिए अमृत दो।

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे॥[१०]

अर्थात् वायु ! तुम इस ओर बहकर औषध ले आओ और जो अहितकर है, उसे यहाँ से बहा ले जाओ। तुम संसार के औषध-रूप हो। तुम देव-दूत होकर जाते हो।

एक स्थान पर वैदिक ऋषि प्रार्थना करता है कि पाप-ताप शून्य होकर वायु बहे।[११] इससे प्रतीत होता है कि ऋषि प्रदूषणरहित वायु के सञ्चरण का पक्षधर है।

पञ्चमहाभूतों में अग्नि का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। सृष्टि के नियमन के निमित्त अग्नितत्त्व का सन्तुलन आवश्यक है। अग्नितत्त्व के वैशिष्ट्य को स्थापित करते हुए इसे पावक और शुचि कहा गया है। पावक का अर्थ होता है पवित्र करने वाला। अग्नि स्वयं पवित्र होती हुई अन्य वस्तुओं को भी पवित्र करती है। अतः कहा गया है-

शुचिः पावको अद्भुतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति।
नराशंसस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः॥[१२]

अर्थात् देवों में स्वच्छ, पवित्र, अद्भुत, द्युतिमान् और यज्ञ-सम्पादक नाराशंस नामक अग्नि द्युलोक से आकर हमारे यज्ञ को मधु से मिश्रित करें।

यजुर्वेद में अग्नि को जीवन को पवित्र करने वाला कहा गया है।[१३] इसे संसार का अमरदूत कहा जाता है।[१४] यह समस्त शोषक कीटाणुओं को नष्ट करता है।[१५] ऋग्वेद भी इसी तथ्य को पुष्ट करते हुए कहता है-

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम्।
अग्निर्नो वनते रयिम्॥[१६]

---

[८] तत्रैव, १०.१८६.२
[९] तत्रैव, १०.१८६.३
[१०] तत्रैव, १०.१३७.३
[११] तत्रैव, ८.१८.९
[१२] तत्रैव, १.१४२.३
[१३] यजुर्वेद, १९.३८
[१४] तत्रैव, १५.३२-३३
[१५] तत्रैव, १७.१६
[१६] ऋग्वेद, ६.१६.२८

अर्थात् अग्नि अपने तीक्ष्ण तेज के द्वारा सब वस्तुओं के भोजनकर्त्ता, राक्षसों के संहारकर्त्ता और हम लोगों के धनप्रदाता हैं।

वस्तुतः अग्नि दूषित तत्त्वों को नष्ट करता है[१७] एवं प्राकृतिक तत्त्वों का रक्षक और प्रकाशक है।[१८] इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए मनुस्मृति में अग्नि में अशुद्ध वस्तुओं के प्रक्षेपण का निषेध किया गया है। इसके अनुसार- "**नामेध्यं प्रक्षिपेदग्नौ न च पादौ प्रतापयेत्**" [१९] अर्थात् अग्नि में कोई गन्दी वस्तु न फेकें तथा आग में पैरों को न सेकें।

अग्नितत्त्व के पश्चात् जल की स्थिति मानी गई है। चराचर प्राणियों के लिए जल का महत्त्व सर्वविदित है। आज नानाविध कारणों से जलस्रोत प्रदूषित हो रहे हैं। प्रदूषित जल जहाँ अनेक रोगों का हेतु है वहीं शुद्ध जल उन रोगों के शमन का सशक्त माध्यम। इसीलिए अथर्ववेद की उद्घोषणा है-

इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः।
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना॥[२०]

अर्थात् हम स्वयं रोगरहित तथा रोगविनाशक जल को अनश्वर अग्निदेव के साथ घर में स्थित करते हैं।

जल की उयोगिता को स्वीकार करते हुए ऋग्वेद में कहा गया है-

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये।
देवा भवत वाजिनः॥[२१]

अर्थात् जल के भीतर अमृत और ओषधि है। हे ऋषि लोग, उस जल की प्रशंसा के लिए उत्साही बनिए। इसी क्रम में वैदिक ऋषि आगे कहता है-

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजीः॥[२२]

अर्थात् हे जल ! मेरे शरीर के लिए रोगनाशक औषध पुष्ट करो, जिससे मैं बहुत दिनों तक सूर्य को देख सकूँ।

शुद्ध जल में मङ्गलकारी शक्ति और अमृत विद्यमान है।[२३] ऋग्वेद के अनुसार इसमें सारे देवता सक्रिय-रूप से विद्यमान हैं।[२४] यह मनुष्य को दीर्घ आयु देने वाला, प्राणों का रक्षक और कल्याणकारी

---

[१७] तत्रैव, ७.१५.१०
[१८] तत्रैव, १.१.८
[१९] मनुस्मृति, ४.५३
[२०] अथर्ववेद, ३.१२.९
[२१] ऋग्वेद, १.२३.१९
[२२] तत्रैव, १.२३.२०
[२३] तत्रैव, १०.३०.१२

है।[२५] यजुर्वेद का कथन है कि जल देवता है, महान् है और विश्व का कल्याणकारी है।[२६] इसीमें जल को दूषित न करने की बात कही गई है।[२७] जल को मानवमात्र का आधार कहा गया है।[२८] जल चेहरे का सौन्दर्य तथा कोमलता और कान्ति बढ़ाने में औषधिरूप है। भोजन के पाचन में अधिक मात्रा में शुद्ध जल पीना आवश्यक है।[२९] सामवेद में जल द्वारा योगक्षेम की बात कही गई है।[३०]

अथर्ववेद में ऋषि शुद्धता के लिए स्वच्छ जल प्रवाहित होने की बात करता है।[३१] इसी वेद में जल को देवता के रूप में स्वीकार कर उसकी प्रार्थना की गई है-

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु॥
यासा राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम्।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु॥
यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु॥[३२]

अर्थात् जो जल सोने के समान आलोकित होने वाले रंग से सम्पन्न, अत्यधिक मनोहर, शुद्धता प्रदान करने वाला है, जिससे सवितादेव और अग्निदेव उत्पन्न हुए हैं, जो श्रेष्ठ रंग वाला जल अग्निगर्भ है, वह जल हमारी व्याधियों को दूर करके हम सबको सुख और शान्ति प्रदान करे। जिस जल में रहकर राजा वरुण सत्य एवम् असत्य का निरीक्षण करते चलते हैं, जो सुन्दर वर्ण वाला जल अग्नि को गर्भ में धारण करता है, वह हमारे लिए शान्तिप्रद हो। जिस जल के सारभूत तत्त्व का इन्द्रदेव आदि देवता द्युलोक में सेवन करते हैं, जो अन्तरिक्ष में विविध प्रकार से निवास करते हैं, वह अग्निगर्भा जल हम सबको सुख और शान्ति प्रदान करे।

ऋग्वेद में भी जल के देवत्व को स्वीकार करते हुए कहा गया है-

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयञ्जाः।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥
यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम्।

---

[२४] तत्रैव, १०.७२.६
[२५] तत्रैव, १०.९.४
[२६] यजुर्वेद, ४.७
[२७] तत्रैव, ६.२२
[२८] अथर्ववेद, १.५.४
[२९] तत्रैव, ३.१३.५
[३०] सामवेद, ३३
[३१] अथर्ववेद, १२.१.३०
[३२] तत्रैव, १.३३.१-३

मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥
यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥[३३]

अर्थात् जो जल अन्तरिक्ष में उत्पन्न होते हैं, जो नदी आदि में प्रवाहित होते हैं, जो खोदकर निकाले जाते हैं और जो स्वयम् उत्पन्न होकर समुद्र की ओर जाते हैं,वे ही दीप्ति से युक्त और पवित्र (देवी-स्वरूप) जल हमारी रक्षा करें। जिनके स्वामी वरुणदेव जलसमूह में सत्य और मिथ्या के साक्षी होकर मध्यमलोक में जाते हैं, वे ही रस गिराने वाली, प्रकाश से युक्त और शोधिका जल-देवियाँ हमारी रक्षा करें। जिनमें राजा वरुण निवास करते हैं, जिनमें सोम रहता है, जिनमें अन्न पाकर विश्व-देवगण प्रमत्त होते हैं और जिनमें वैश्वानर पैठते हैं, वे ही प्रकाशक जल हमारी रक्षा करें।
इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए मनुस्मृति में कहा गया है-

नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीवनं वा समुत्सृजेत्।
अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा॥[३४]

अर्थात् जल में मूत्र, विष्ठा, थूक, खून, अथवा विष या अपवित्र वस्तु से लिपी कोई वस्तु न फेंके।

पञ्चमहाभूतों में पृथिवी का स्थान भी आता है। इसमें सभी महाभूतों के गुण होते हैं। पृथिवी प्रकृतिदेवी का ऐसा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है जो समस्त चराचर प्राणियों की आश्रयस्थली है। लेकिन भौतिकता की अन्धी दौड़ में मानव ने इसे भी नहीं छोड़ा। सम्प्रति मृतिकाप्रदूषण की समस्या ने जब मिट्टी की उर्वरा शक्ति में ह्रास लाने का कार्य किया तब वैज्ञानिकों ने इस दिशा में अपनी सोच को बढ़ाया है। अगर हम वैदिक ऋषियों की बातों का पालन करें तो इस प्रदूषण पर नियन्त्रण सम्भव है। पृथिवी तत्त्व की महत्ता सभी वेदों में स्वीकार की गई है। यजुर्वेद में पृथिवी को माता के रूप में स्वीकार किया गया है- "**पृथिवी माता**"।[३५] अथर्ववेद में तो एक पूरा सूक्त ही भूमिसूक्त के रूप में हमारे सामने आता है। यहाँ कतिपय प्रासङ्गिक मन्त्रों का उल्लेख किया जा रहा है-

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संभभूवुः।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु॥[३६]

अर्थात् हमारी जिस मातृभूमि में सागर, महासागर, नद, नदी, नगर, झीलें-तालाब, कुएँ आदि जल साधन हैं , जहाँ सब भाँति के अन्न, फल तथा शाक आदि अत्यधिक मात्रा में पैदा होते हैं, जिसके सभी प्राणी सुखी हैं, जिसमें कृषक लोग, शिल्पकर्म-विशेषज्ञ तथा उद्यमी लोग अत्यधिक संगठित हैं, इस प्रकार हमारी पृथिवी हमें श्रेष्ठ भोग्य पदार्थों और यशोवृद्धि का साधन बने।

---

[३३] ऋग्वेद, ७.५०.२-४
[३४] मनुस्मृति, ४.५६
[३५] यजुर्वेद, २.१०
[३६] अथर्ववेद, १२.१.३

विश्वंभरा वसुधानीं प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु॥[३७]

अर्थात् विश्व के सभी जीवों का पोषण करने वाली, सम्पदाओं की खान, सबको प्रतिष्ठित करने वाली, स्वर्णिम वक्ष वाली यह भूमि अग्रणी, बलशाली इन्द्रदेव तथा हम सबको अनेक प्रकार के धन धारण कराने वाली हो।

यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्तु ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः॥[३८]

अर्थात् हे पृथिवी माता ! जो आपके मध्यभाग और नाभिस्थान हैं तथा आपके शरीर से जो पोषणयुक्त पदार्थ प्रादुर्भूत होते हैं, उसमें आप हमें प्रतिष्ठित करें और हमें पवित्रता प्रदान करें। यह धरती हमारी माता है और हम सब उसके पुत्र हैं।

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्।
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम्॥[३९]

हे धरतीमाता ! आपके हिमाच्छादित पर्वत और वन हमारे लिए सुखदायक हों । वे शत्रुओं से रहित हों, विभिन्न रंगों वाली इन्द्रगुप्ता पृथिवी पर मैं क्षय से रहित, कभी पराजित न होने वाला और अनाहत होकर प्रतिष्ठित रहूँ।

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि॥[४०]

जिस भूमि में वृक्ष-वनस्पति और लता आदि सदा स्थिर रहते हैं, जो वृक्ष-लतादि ओषधिरूप में सबकी सेवा सम्पन्न करती हैं, ऐसी वनस्पतिधारिणी, धर्मधारिणी और सर्वपालनकर्त्री धरती की हम शीश झुकाकर स्तुति करते हैं।

विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम्।
ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि षीदेम भूमे॥[४१]

क्षमास्वरूपिणी, परम पावन और मन्त्रों द्वारा वृद्धि को प्राप्त होने वाली भूमि की हम स्तुति करते हैं। हे पुष्टिदात्री, अन्नरस और बलधारणकर्त्री पृथिवी माता ! हम आपको घृताहुति समर्पित करते हैं।

---

[३७] तत्रैव, १२.१.६
[३८] तत्रैव, १२.१.१२
[३९] तत्रैव, १२.१.११
[४०] तत्रैव, १२.१.२७
[४१] तत्रैव, १२.१.२९

यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिणम्॥[४२]

अर्थात् हे पृथिवी माता ! जब आपको खोदें, तो वे वस्तुएँ शीघ्र उगें। अनुसन्धान के क्रम में हमारे द्वारा आपके मर्म-स्थलों को अथवा हृदय को हानि न पहुँचे।

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय॥[४३]

अर्थात् गुरुत्वाकर्षणशक्ति को धारण करने की क्षमता से युक्त, पुण्यात्मा और पापात्मा दोनों प्रकार के मनुष्यों को सहन करती हुई वह पृथिवी उत्तम जल देने के साथ मेघों से युक्त सूर्य की किरणों से अपनी मलीनता का निवारण करके, सूर्य के चारों ओर विशेष-रूप से गमन करती है।

वृक्ष-वनस्पति

प्राकृतिक पर्यावरण के अन्तर्गत वृक्ष-वनस्पतियों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक वैज्ञानिक-शोधों से यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि इनके माध्यम से सर्वविध पर्यावरण पर नियन्त्रण रखा जा सकता है। वैदिकसाहित्य के अवगाहन से स्पष्ट होता है कि जहाँ एक ओर वृक्षारोपण को प्रोत्साहित किया जाता था वहीं दूसरी ओर इनके हनन को हतोत्साहित।यजुर्वेद में पर्यावरणशुद्धि को ध्यान में रखते हुए ओषधी की हिंसा का निषेध किया गया है। वेदों में जिस प्रकार अग्नि, सोम, सूर्य आदि का देवत्व स्वीकार किया गया है, उसी प्रकार वृक्षों का देवत्व स्वीकार कर स्थान-स्थान पर उनका स्तवन किया गया है- "**नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः**"[४४] अर्थात् हरे-हरे पत्तों रूपी केशों से युक्त वृक्षों के लिए नमस्कार है। "**वनानां पतये नमः**"[४५] अर्थात् वनों के स्वामी के लिए नमस्कार है। "**वृक्षाणां पतये नमो**"[४६] अर्थात् वृक्षों के स्वामी को नमस्कार है। अनेक स्थानों पर वृक्षों और वनस्पतियों को सबके लिए मधुमय,हितकारी एवं शान्तिदायक होने की कामना की गई है- "**सुमित्रिया न आप ओषधयः**"[४७] अर्थात् ओषधियाँ हमारे लिए मित्र होवें। "**माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः**"[४८] अर्थात् हमारे लिए ओषधियाँ मधुर होवें। **ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः। अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः॥**[४९] अर्थात् फूलों

---

[४२] तत्रैव, १२.१.३५
[४३] तत्रैव, १२.१.४८
[४४] यजुर्वेद, १६.१७
[४५] तत्रैव, १६.१८
[४६] तत्रैव, १६.१९
[४७] तत्रैव, ३६.२३
[४८] तत्रैव, १३.२७
[४९] तत्रैव, १२.७७

वाली, फलों को उत्पन्न करने वाली, अश्वों के युद्ध को जीतने के समान रोगपुञ्ज को विजित करने वाली, व्याधियों को विविध रूपों से अवरुद्ध करने वाली और हमें पार लगाने वाली हे ओषधियो ! तुम सर्वथा प्रसन्न होओ।

औषधियों के मूल को नहीं काटा जाता है।[५०] औषधियों को हिंसित नहीं करना चाहिए ।[५१] इसीलिए वेदों में वनस्पतियों में देवत्व की अवधारणा का विकास हुआ है।

प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेकशुङ्गाः प्रतन्वतीरोषधीरा वदामि।
अंशुमतीः काण्डिनीर्या विशाखा ह्वयामि ते वीरुधो वैश्वदेवीरुग्राः पुरुषजीवनीः॥[५२]

अर्थात् विशेष विस्तारवाली, गुच्छकवाली, एक कोंपल वाली और अति प्रशाखाओं वाली ओषधियों को हम आवाहित करते हैं। अंशुमती, काण्डों वाली, अनेक प्रकार की शाखाओं से युक्त, सभी देवताओं से सम्बन्धित, प्रभावमयी, जीवनदायिनी ओषधियों को हम आवाहित करते हैं।

वेदों की यह उद्घोषणा है कि वनस्पतियों को कभी नष्ट न करना चाहिए।[५३] सम्भवतः इसी कारण वनस्पतियों को मातृरूप में स्वीकार किया गया है।[५४] वनस्पतियों के संरक्षण के लिए मनुस्मृति में कहा गया है- "**इन्धनार्थमशुष्काणां द्रुमाणामवपातनम्।**"[५५] अर्थात् इन्धन के निमित्त भी हरे वृक्षों को काटना पाप है। पादपों को नष्ट करने पर दण्ड का विधान मनुस्मृति में प्राप्त होता है। जीव-जन्तुओं के हनन का निषेध भी मनुस्मृति में प्राप्त होता है।

जैव-संरक्षण

मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य जीवधारी भी पर्यावरण के अभिन्न अङ्ग हैं। अतः इनके संरक्षण की बात भी वेदों में की गई है। यजुर्वेद में यजमान को सभी पशुओं को सुरक्षित रखने के लिए कहा गया है- '**यजमानस्य पशून्पाहि।**'[५६] इसी वेद में आगे गार्हपत्य-अग्नि से प्रार्थना की गई है कि वह पशुओं को आदि से बचाए।[५७] अथर्ववेद में कहा गया है कि जंगली मृगादि पशु रुद्र के हैं।[५८] अगर ऐसी बात है तो इन पशुओं के हनन को उचित नहीं कहा जा सकता है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर मनुस्मृति में जीव-जन्तुओं की हत्या को घोर पाप की सञ्ज्ञा दी गई है। मनुस्मृति का कथन है -

---

[५०] तत्रैव, १.२५
[५१] तत्रैव, ६.२२
[५२] अथर्ववेद, ८.७.४
[५३] ऋग्वेद, ६.४८.१७
[५४] तत्रैव, १०.८.९७
[५५] मनुस्मृति, ११.६४
[५६] यजुर्वेद, १.१
[५७] तत्रैव, ३.३७
[५८] अथर्ववेद, ११.२.२४

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया।
स जीवनञ्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते॥[५९]

अर्थात् जो व्यक्ति अपने सुख की इच्छा से कभी न मारने योग्य प्राणियों की हत्या करता है वह जीते हुए और मरकर भी कहीं भी सुख को प्राप्त नहीं करता।

मनुस्मृति पुनः कहती है-

अनुमन्ता विशासिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः॥[६०]

अर्थात् मारने की आज्ञा देने वाला, मांस को काटने वाला, पशु को मारने वाला, पशुओं को मारने के लिए मोल लेने और बेचने वाला, पकाने वाला और खाने वाला ये सब हत्यारे और पापी हैं।

मानसिक-पर्यावरण

सब इन्द्रियों के प्रवर्तन में मन ही कारण होता है। अतः मन का सात्त्विक होना सर्वविध कल्याण का हेतु है। मन के प्रमाद से दुःख पर्वतशिखर के समान बढ़ते हैं और उसको वश में कर लेने से ही इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्य के सामने हिम। अतः मानसिक-पर्यावरण को व्यवस्थित रखने की महती आवश्यकता है। वस्तुतः पराक्रम, धन, और मित्र भी उस तरह दुःख से छुटकारा नहीं दिला सकते, जिस प्रकार दृढतापूर्वक संयम में रहने वाला अपना मन दिला सकता है। अतः ऋग्वेद कहता है-'**भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुतक्रतुम्**'[६१] अर्थात् हे सोम ! हमारे मन को इस प्रकार उत्तम-रूप से प्रेरित करो कि वह निपुण और कर्मनिष्ठ हो। वस्तुतः सम्पूर्ण इन्द्रियों को शुभ और अशुभ अवस्था में लगने की प्रेरणा देने में मन ही कारण है-'**मनो हि हेतुस्सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तते**'[६२]

मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है। विषयाशक्ति बन्धन का कारण है और निर्विषय मन मुक्ति का साधन है-

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्तं निर्विषयं स्मृतम्॥[६३]

यजुर्वेद में कहा गया है कि ज्योतियों में एक ही ज्योति जो मेरा मन है, वह शुभ सङ्कल्पों वाला हो-

'**ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।**[६४]

---

[५९] मनुस्मृति, ५.४५
[६०] तत्रैव, ५.५१
[६१] ऋग्वेद, १०.२५.१
[६२] वाल्मीकिरामायण, ५.११.४२
[६३] ब्रह्मबिन्दूपनिषद्, २
[६४] यजुर्वेद, ३४.१

वह पुनः कहता है- जिस अमर मन के द्वारा यह भूत-भविष्य-वर्तमान सब जगत् धारित किया हुआ है और जिसके द्वारा सात होताओं वाला यज्ञ विस्तारित किया जाता है, वह मेरा मन हे परमात्मन्! सदा शुभ सङ्कल्पों वाला ही होवे-

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेनसर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥[६५]

वैदिक ऋषि पुनः प्रार्थना करता है कि मन के काम, सङ्कल्प और वाणी के सत्य को हम प्राप्त करें- **मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय।**[६६] अथर्ववेद में भी मन के कल्याणकारी होने की बात कही गई है।[६७] मानसिक-पर्यावरण के सन्दर्भ में मनुस्मृति का कथन है कि मनुष्यों को इन्द्रियों के वशीभूत नहीं होना चाहिए, अपितु उन्हें अपने वश में करना चाहिए-

वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा।
सर्वान्संसाधयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्तनुम्॥[६८]

अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि वह सब इन्द्रियों (पञ्च ज्ञानेन्द्रिय तथा पञ्च कर्मेन्द्रिय) एवं मन को वश में करके युक्ताहार-विहाररूप योग से शरीर की रक्षा करता हुआ अपने सब प्रयोजनों को सिद्ध करे।

धार्मिक-पर्यावरण

इस सम्बन्ध में किञ्चित् भी विचिकित्सा नहीं है कि वैदिकवाङ्मय में धर्मतत्त्व की स्थापना की गई है। धर्म के अतिक्रमण से प्राप्त की गई सिद्धि कभी चिरस्थायी नहीं होती। वैशेषिकदर्शन के अनुसार जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि हो, वह धर्म है-'**यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः**'[६९] धर्म सम्पूर्ण जगत् की प्रतिष्ठा है और धर्म पर ही सारा संसार टिका है। वस्तुतः धर्म से उत्कृष्ट तत्त्व कुछ भी नहीं है - **यद्धर्मस्तस्माद्धर्मात्परं नास्ति।**[७०] धर्म में सब कुछ प्रतिष्ठित है। यही कारण है कि धर्मज्ञ मनीषी **धर्म को सर्वोपरि मानता है-धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा। तस्माद्धर्मं परमं वदन्ति।**[७१] इसी कारण तैत्तिरीय-आरण्यक में कहा गया है कि संसार में लोग धर्मशील के समीप ही जाते हैं। धर्माचरण से पाप दूर हो जाता है। धर्म पर सब कुछ आधृत है, अतः धर्म सर्वश्रेष्ठ है।[७२] शरीरधारियों के सब दुःख अधर्म से होते हैं और अक्षय सुख का संयोग धर्म से होता है-

---

[६५] तत्रैव, ३४.४
[६६] तत्रैव, ३९.४
[६७] अथर्ववेद, ६.५३.३
[६८] मनुस्मृति, २.७५
[६९] वैशेषिकसूत्र, १.२
[७०] बृहदारण्यकोपनिषद्, १.४.१४
[७१] श्रीमन्नारायणोपनिषद्
[७२] तै.आरण्यक, १०.६३.७

अधर्मप्रभवं चैव दुःखयोगं शरीरिणाम् ।
धर्मार्थप्रभवं चैव सुखसंयोगमक्षयम् ॥[७३]

आश्वालायनगृह्यसूत्र में धर्म के विषय में कहा है कि- **धारणात् श्रेय आदधाति इति धर्मः** अर्थात् जिसके अनुसार चलने से मनुष्य का श्रेय होता है, यश, उन्नति एवं मोक्ष होते हैं, उसे धर्म कहते हैं। मनुस्मृति में धर्म के लक्षण को इस प्रकार बताया गया है-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥[७४]

अर्थात् धृति (सदा धैर्य रखना), क्षमा (निन्दा-स्तुति, मान-अपमान, हानि-लाभ आदि दुःखों में भी सहनशील रहना), दम (मन को सदा धर्म में प्रवृत्त कर अधर्म से रोक देना), अस्तेय (चोरी-त्याग), शौच (राग-द्वेष आदि छोड करके आभ्यन्तरिक पवित्रता तथा जल, मृत्तिका, मार्जन आदि से बाह्य पवित्रता), इन्द्रियनिग्रह (इन्द्रियों के विषयों के वशीभूत न होना), धी (सत्सङ्गति तथा योगाभ्यास से बुद्धि बढाना), विद्या (वास्तविक ज्ञान को प्राप्त करना), सत्य तथा अक्रोध-ये धर्म के दश लक्षण हैं।

इस प्रकार यह पाया जाता है कि धर्म के नानाविध तत्त्व हैं, जिनका अगर अभ्यास किया जाए तो धार्मिक पर्यावरण तो सुरक्षित रहेगा ही, सर्वविध प्रदूषण की समस्या के समाधान का मार्ग प्रशस्त हो जायेगा।

सामाजिक एवं पारिवारिक-पर्यावरण

किसी भी व्यवस्था को गतिशील एवम् अनुकरणीय बनाने में सामाजिक और पारिवारिक पर्यावरण का योगदान किसी से छिपा नहीं है। वस्तुतः जिस समाज में मानवीय-विचारों और व्यवहारों के निरन्तर परिवर्तमान मूल्यों के विचार करने वाले मनीषी, प्रकृति के रहस्य भेदकर नवीन-नवीन जानकारियाँ उद्घाटित करने वाले अनुसन्धाता नहीं होते, वह समाज प्रवाहरुद्ध जलराशि की भाँति गन्दा, गतिहीन और मृत बन जाता है। अतः सामाजिक-पर्यावरण को मानवीय गुणों से युक्त बनाना चाहिए। इसीलिए ऋग्वेद का उद्घोष है-

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते॥
समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥

---

[७३] मनुस्मृति, ६.६४
[७४] तत्रैव, ६.९२

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥[७५]

अर्थात् तुम मिलित होवो, एक साथ होकर स्तोत्र पढ़ो और तुम लोगों का मन एक-सा हो। जैसे प्राचीन देवता, एकमत होकर, अपना हविर्भाग स्वीकार करते हैं, वैसे ही तुम भी, एकमत होकर, धनादि ग्रहण करो। इन पुरोहितों की स्तुति एक-सी हो, इनका आगमन एक साथ हो और इनके मन (अन्तःकरण) तथा चित्त (विचारजन्य ज्ञान) एकविध हों। पुरोहितों, मैं तुम्हें एक ही मन्त्र से मन्त्रित (संस्कृत) करता हूँ और तुम्हारा साधारण हवि से हवन करता हूँ। यजमान पुरोहितों,तुम्हारा अध्यवसाय एक हो, तुम्हारे हृदय एक हों और तुम्हारा अन्तःकरण एक हो। तुम लोगों का सम्पूर्ण सङ्गठन हो।

अच्छे सामाजिक पर्यावरण की स्थापना के लिए पारिवारिक-पर्यावरण के भी सन्तुलित होने की आवश्यकता है। अतः अथर्ववेद का कथन है-

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्॥
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥
येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः॥
ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः.।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि॥[७६]

अर्थात् पुत्र अपने पिता के अनुकूल कर्म करने वाला हो और अपनी माता के साथ समान विचार से रहने वाला हो। पत्नी अपने पति से मधुरता तथा सुख से युक्त वाणी बोले। भाई अपने भाई से विद्वेष न करे और बहिन अपनी बहन से विद्वेष न करे। वे सब एक विचार तथा एक कर्म वाले होकर परस्पर कल्याणकारी वार्तालाप करें। जिसकी शक्ति से देवगण विपरीत विचार वाले नहीं होते हैं और विद्वेष भी नहीं करते हैं, उस समान विचार को सम्पादित करने वाले ज्ञान को हम आपके घर के मनुष्यों के लिए जाग्रत या प्रयुक्त करते हैं। आप छोटों-बड़ों का ध्यान रखकर व्यवहार करते हुए, समान विचार रखते हुए तथा समान कार्य करते हुए पृथक् न हों। आप एक दूसरे से वार्तालाप करते हुए पधारें। हे मनुष्यों! हम भी आपके समान कार्यों में प्रवृत्त होते हैं।

---

[७५] ऋग्वेद-१०.१९१.२-४
[७६] अथर्ववेद, ३.३०.२-५

यज्ञ और पर्यावरण

पर्यावरण की शुद्धि में यज्ञ के महत्त्व को आज के वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं। हमारे यहाँ वेदों में यज्ञों की अपार महिमा निरूपित की गई है। यज्ञ के सम्बन्ध में कहा गया है कि यह समस्त भुवनों का केन्द्र है-

"**अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।**[७७]

यह आत्मिक बल प्रदान करता है।[७८] यह देवों के पास कल्याणकारी रूप में जाता है।[७९] शतपथ-ब्राह्मण में यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ कर्म माना गया है। ऋग्वेद के अनुसार यज्ञ पापों से बचाता है।[८०] यज्ञ आज के परिप्रेक्ष्य में पहले से अधिक प्रासङ्गिक हो गए हैं क्योंकि पर्यावरण-प्रदूषण की समस्या ने वर्तमान समय में विकराल-रूप धारण कर लिया है। इसी सम्बन्ध में 'विज्ञान-प्रगति' में १९९६ में एक लेख प्रकाशित हुआ था।[८१] उसी को आधार बनाकर आगे की बात लिखी जा रही है। यज्ञाग्नि का सुगन्धित धुआँ पर्यावरण में फैले विषाणुओं का विनाश करता है। यज्ञ में प्रयुक्त पदार्थों का विविध रासायनिक परिवर्तन होता है। सामान्यतः यज्ञाग्नि का ताप २५० से ६०० डिग्री सेल्सियस के बीच रहता है। प्रज्वलित पदार्थों के ताप में १२०० से १३०० डिग्री सेल्सियस के बीच वृद्धि होती है। पदार्थों में अवस्थित हाइड्रोजन वायुमण्डल की आक्सीजन के साथ संयोग करके अधिक मात्रा में वाष्प का निर्माण करती है। घी वसायुक्त पदार्थ होने के कारण लकड़ियों के सेल्यूलोज़ के तीव्र दहन में सहायक होता है। इस अभिक्रिया से उत्पन्न हाइड्रोकार्बन का भी धीरे-धीरे दहन होता है जिसके फलस्वरूप मिथाइल एवम् इथाइल अल्कोहल, एसिटल्डिहाइड, फार्मल्डिहाइड, फार्मिक अम्ल एवम् एसिटिक अम्ल का निर्माण होता है। उत्सर्जित धूम कलिलयान के सदृश कार्य करता है जिससे सुगन्धित पदार्थ वाष्पीकृत होकर वायु के साथ विसरित होने लगता है एवं यज्ञीय परिवेश में सुगन्धि की अनुभूति होती है। जब सारे वाष्पशील पदार्थ विसरित हो जाते हैं तब सूर्य के प्रकाश में प्रकाश रासायनिक-क्रिया प्रारम्भ होती है। यही कारण है कि यज्ञ सूर्य के प्रकाश की पूर्ण उपस्थिति में ही सम्पन्न किए जाते हैं। सुगन्धित धूमयुक्त पदार्थों का रासायनिक सङ्गुणन, उपचयन और अपचयन होता है। दहन-प्रक्रिया में उत्पन्न CO_2 का भी कुछ सीमा तक अपचयन होता है। वायुमण्डल में व्याप्त CO, CO_2, एवं नाइट्रोजन के आक्साइड इत्यादि प्रदूषकों को यज्ञ के द्वारा नियन्त्रित किया जा सकता है। वस्तुतः पर्यावरण में उपस्थित धन विद्युतीय आवेश बढ़कर उसे प्रदूषित करता रहता है। यज्ञ में पदार्थों की अपचयन-क्रिया के द्वारा वायुमण्डल में

---

[७७] यजुर्वेद, २३.६२

[७८] तत्रैव, १८.२९

[७९] तत्रैव, ८.४

[८०] ऋग्वेद, १.१६४.३५

[८१] पाठक कमलाकान्त, यज्ञ द्वारा पर्यावरण-संरक्षण, विज्ञान-प्रगति, वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धान परिषद्, नई दिल्ली, १९९६

ऋण विद्युतीय आवेश (इलेक्ट्रान) का आधिक्य हो जाता है। बादलों के साथ संयुक्त होने पर ये इलेक्ट्रान उसके विषांश को समाप्त कर देते हैं। वर्षा के रूप में भूमि पर गिरता हुआ जल बिल्कुल शुद्ध एवं स्वास्थ्यप्रद होता है। जल में जैविक आक्सीजन माँग तथा रासायनिक आक्सीजन माँग की मात्रा तेजी से नियन्त्रित होती है जो जीवों के लिए अत्यावश्यक है। इसके अतिरिक्त और कई जल-प्रदूषक पैरोमीटर भी नियन्त्रित हो जाते हैं। यही कारण है कि यज्ञ के द्वारा परिशोधित जल एवं वायु मनुष्यों के अलावा वृक्षों, जन्तुओं इत्यादि के लिए भी वृद्धिकारक और कीटाणुनाशक हो जाते हैं जिससे हरीतिमा संवर्धन भी होता है।

वस्तुतः मनुष्यों को अपने जीवन के सर्वविध कल्याणार्थ यज्ञधर्म को अपनाना चाहिए। मानव का और यज्ञ का परस्पर सम्बन्ध सृष्टि के प्रारम्भकाल से ही चलता आ रहा है। वस्तुतः देखा जाए तो मानव-जाति के जीवन का प्रारम्भ ही यज्ञ से होता है। इस विषय का स्पष्टीकरण श्रीमद्भगवद्गीता में भी किया गया है -

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥
देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥[९२]

अर्थात् प्रजापति ने सृष्टि रचना के समय यज्ञ के साथ मानव-जाति को उत्पन्न करके उनसे कहा- इस यज्ञ के द्वारा तुम्हारी उन्नति होगी और यह यज्ञ तुम्हारे लिए मनोऽभिलषित फल देने वाला होगा। तुम इस यज्ञ के द्वारा देवताओं को सन्तुष्ट करो और देवता तुम लोगों को यश-फल प्रदान के द्वारा सन्तुष्ट करेंगे। इस प्रकार तुम दोनों अत्यन्त कल्याणपद को प्राप्त करो।

निःसन्देह वैदिकसाहित्य में पर्यावरण के प्रति जो संवेदना दिखाई गई है वह अतुलनीय है। पर्यावरण के प्रति दृष्टिकोण क्या हो ? इसका विवेचन भी वेदों में किया गया है। वेदकालीन-समाज में न केवल पर्यावरण के सभी पहलुओं पर चौकन्नी दृष्टि थी, वरन् उसकी रक्षा और महत्त्व को भी स्पष्ट किया था। वेदोक्त उपायों का यदि सम्यक् रीति से पालन किया जाए तो इसमें सन्देह नहीं कि विश्व की ज्वलन्त समस्या का समाधान हो जायेगा।

डॉ. धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी
सहायक-प्रोफेसरः, संस्कृतविभाग, राँचीकालेज
मोराबादी मैदान, राँची, झारखण्ड-८३४००२

[९२] श्रीमद्भगवद्गीता-३.१०-११